ISSN : 3048-6203 Volume -2| Issue -2| July - Dec 2025

शोध भूमि

शिक्षा एवं शिक्षण शास्त्र विषय की पूर्व समीक्षित शोध पत्रिका

Page No. : 455-461

योग विषयक दार्शनिक बिन्दुओं का चिंतन : महर्षि दयानंद सरस्वती के संदर्भ में

प्रियंका कुमारी
शोध छात्रा
श्रद्धानन्द शोध संस्थान विभाग
प्राच्य विद्या संकाय
गुरुकुल कांगड़ी सम–विश्वविद्यालय हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत
ईमेलः priyanka.kumari5551995@gmail.com

सारांश

योग भारतीय दर्शन की अमूल्य धरोहर है, जो न केवल शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का माध्यम है, बल्कि आत्मा की शुद्धि एवं परम सत्य की प्राप्ति का मार्ग भी है। वैदिक परंपरा में योग का उल्लेख केवल एक साधना पद्धति के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के परम उद्देश्य मुक्ति की दिशा में अग्रसर होने वाले साधन के रूप में होता है। इस संदर्भ में महर्षि दयानन्द सरस्वती का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने योग को वेदसम्मत उपासना मानते हुए उसके दार्शनिक पक्षों को स्पष्ट किया। उन्होंने अपने ग्रंथ, सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि एवं उपदेशमंजरी आदि में ईश्वर, आत्मा, जीव, पुनर्जन्म एवं मुक्ति जैसे विषयों पर विशद विचार प्रस्तुत किए हैं। उनका मानना था कि चित्त की वृत्तियों को सब बुराईयों से हटा कर के, शुभ गुणों में स्थिर करके, परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करना योग हैं। उन्होंने योग को वैदिक ज्ञान से जोड़ते हुए इसे धर्म, कर्म और मोक्ष की सिद्धि का साधन बताते हुए कहा ''**यथा विदुषी माता विद्यासुक्षिभ्यां स्वसन्तानान् वर्द्धयति, तथाऽनुष्ठितानि योगकर्माणि योगिनो वर्द्धयन्ति**'' अर्थात् जैसे विदुषी माता विद्या और अच्छी शिक्षा से अपनी सन्तानों में गुणों का सृजन करती है, वैसे ही योग अंगों का अनुष्ठान किये हुए योगी भी बढ़ते है। इस शोध का उद्देश्य महर्षि दयानन्द के विचारों के आलोक में योग के दार्शनिक बिन्दूओं ''ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म और मुक्ति आदि'' का विश्लेषण करना है, जिससे योग की व्यापकता और उसकी आध्यात्मिक उपयोगिता को समग्र रूप में समझा जा सके।

बीज शब्द : योग, भारतीय दर्शन, महर्षि दयानन्द, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य

योग भारतीय दर्शन की अमूल्य धरोहर है, जो न केवल शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का माध्यम है, बल्कि आत्मा की शुद्धि एवं परम सत्य की प्राप्ति का मार्ग भी है। वैदिक परंपरा में योग का उल्लेख केवल एक साधना पद्धति के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के परम उद्देश्य मुक्ति की दिशा में अग्रसर होने वाले साधन के रूप में होता है। इस संदर्भ में महर्षि दयानन्द सरस्वती का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने योग को वेदसम्मत उपासना मानते हुए उसके दार्शनिक पक्षों को स्पष्ट किया। उन्होंने अपने ग्रंथ, सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि एवं उपदेशमंजरीआदि में ईश्वर, आत्मा, जीव, पुनर्जन्म एवं मुक्ति जैसे विषयों पर

विशद विचार प्रस्तुत किए हैं। उनका मानना था कि चित्त की वृत्तियों को सब बुराईयों से हटा कर के, शुभ गुणों में स्थिर करके, परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करना योग हैं।[प]उन्होंने योग को वैदिक ज्ञान से जोड़ते हुए इसे धर्म, कर्म और मोक्ष की सिद्धि का साधन बताते हुए कहा **''यथा विदुषी माता विद्यासुक्षिभ्यां स्वसन्तानान् वर्द्धयति, तथाऽनुष्ठितानि योगकर्माणि योगिनो वर्द्धयन्ति''** अर्थात् जैसे विदुषी माता विद्या और अच्छी शिक्षा से अपनी सन्तानों में गुणों का सृजन करती है, वैसे ही योग अंगों का अनुष्ठान किये हुए योगी भी बढ़ते है। इस शोध का उद्देश्य महर्षि दयानन्द के विचारों के आलोक में योग के दार्शनिक बिन्दूओं ''ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म और मुक्ति आदि'' का विश्लेषण करना है, जिससे योग की व्यापकता और उसकी आध्यात्मिक उपयोगिता को समग्र रूप में समझा जा सके।

ईश्वर

ईश ऐश्वर्ये धातु से ईश्वर शब्द सिद्ध होता है। **'य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः'** सत्य, विचार, शील, ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा को ईश्वर कहते है।[पप] उसके गुण, कर्म, स्वभाव, और स्वरूप सत्य ही हैं, जो केवल चेतना मात्र वस्तु है तथा जो अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्यगुणवाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करना तथा सभी जीवों को पाप–पुण्य के फल ठीक–ठीक पहुँचाना है, उसको ईश्वर कहते है।[पपप] योगदर्शन में भी ईश्वर को पुरुषविशेष के रूप में वर्णन करते हुए महर्षि पंतजलि कहते हैं कि वह पुरुषविशेष तथाकथित भोग से सम्पर्करहित,[पअ] सर्वज्ञता के पराकाष्ठा[अ] एवं पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है।[अप]

महर्षि ईश्वर के स्वरूप और महत्व का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, सर्वशक्तिमान, दयालु न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्यास से बलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानना चाहिए।[अपप]

इस पर महर्षि से प्रश्न किया गया कि जब परमेश्वर के श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियाँ नहीं हैं, फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है? जिज्ञासा का समाधान करते हुए महर्षि कहते है –

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः श्रृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरुषं पुराणम्।।[अपपप]

अर्थात् परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सब का रचन ग्रहण करता, पग नहीं, परन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान, चक्षु का गोलक नहीं, परन्तु सबको यथावत देखता, श्रोत्र नहीं तथापि बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधिसहित जाननेवाला कोई भी नहीं, उसी को सनातन, सबसे श्रेष्ठ, सबमें पूर्ण होने से पुरुष कहता हैं। वह इन्द्रियों और अन्तःकरण के बिना अपने सब काम अपने सामर्थ्य से करता है।

न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।[पग]

उस परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं। न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया है, वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिया होता तो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय न कर सकता। इसलिए वह **'विभू'** तथापि **'चेतन'** होने से उसमें क्रिया भी है।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन यस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति या इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।[ग]

जो सब दिव्य गुण कर्म स्वभाव विद्यायुक्त और जिसमें पृथ्वी सूर्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक, सब देवों का देव परमेश्वर है; उसको जो मनुष्य न जानते, न मानते और उसका ध्यान नहीं करते, वे नास्तिक मन्दमति सदा दुःखसागर में डूबे रहते हैं। इसलिये सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च तगत्याञ्जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।[गप]

मनुष्य के प्रति वेदभगवान का पवित्र आदेश है कि अखिल विश्व–ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी यह चराचरात्मक जगत् तुम्हारे देखने–सुनने आ में रहा है, उस सब में व्याप्त होकर जो नियन्ता है, वह ईश्वर कहाता है; उससे डरकर तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर, उस अन्याय के त्याग और न्यायाचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से आनन्द को भोग न चाहिए।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।[गपप]

हे मनुष्यो! जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्यादि तेजवाले लोकों का उत्पत्ति–स्थान, आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है और होगा उसका नाम स्वामी था, है और होगा; वह पृथिवी से लेके सूर्यलोक–पर्यन्त सृष्टि को बना के धारण कर रहा है, उस सुखस्वरूप परमात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें, वैसे तुम लोग भी करो।

सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में महर्षि ईश्वर के साकार वा निराकार प्रश्न का समाधान करते हुए लिखते है कि जो साकार होता है वह व्यापक नहीं हो सकता। और जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञत्वादि गुण भी ईश्वर में नही घट सकता। क्योंकि परिमित वस्तु में गुण–कर्म–स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यह निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आँख आदि अवयवों का बनाने वाला दूसरा होना चाहिये। जो कोई यहाँ ऐसे कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व वह निराकार था। इसलिए परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता, किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।[गपपप]

जो साकार है वह ईश्वर ही नहीं है। क्योंकि परिमित शक्तियुक्त, देश–काल वस्तुओं में परिच्छिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीड़ादि सहित होवे। उसमें सिवाय जीव के ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम 'साकार' अर्थात् शरीरधारी हैं, इससे त्रसरेणु, अणु परमाणु और प्रकृति को वश में कभी नहीं ला सकते और न उन सूक्ष्म पदार्थों को पकड़कर स्थूल बना सकते हैं, वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भौतिक–इन्द्रियगोलक हस्त–पादादि अवयवों से रहित है, परन्तु उसकी अनन्त शक्ति बल पराक्रम हैं, उनसे सब काम करता है, जो जीव और प्रकृति से कभी न हो सकते। जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है, तभी उनको पकड़ कर जगदाकार कर देता है। और सर्वगत होने से सबका धारण और प्रलय भी कर सकता है।

जीव

जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को जीव कहते हैं।[गपअ गअ], यह जीव अध्यारोप का करने वाला एवं सब कोष अवस्थाओं से पृथक है[गअप], क्योंकि यह सब को विदित है कि जब मृत्यु होती है तब हर कोई कहता हैं कि जीव निकल गया। यही जीव सबका प्रेरक, सबका धर्त्ता, साक्षी, कर्त्ता, भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्त्ता–भोक्ता नहीं तो उसको जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है। क्योंकि विना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं, इनको सुख–दुःख का भोग वा पाप–पुण्य–कर्तृतव कभी नहीं हो सकता। हाँ, इनके सम्बन्ध से जीव पाप–पुण्यों का कर्त्ता और सुख–दुःखों का भोक्ता है। जब इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है, वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है। और जो विपरीत वर्त्तता है, वह बन्धजन्य दुःख को भोगता है।[गअपप] जबकि महर्षि पंतजलि योगदर्शन में जीवात्मा अर्थात् द्रष्टा–ज्ञाता चेतनपुरुष केवल देखने की शक्तिरूप है। वह निर्विकार, तथा सत्त्वादि प्रकृति के गुणों से रहित होकर भी त्रिगुणा बुद्धि के सान्निध्य के रूप में इसका वर्णन किया गया है।

महर्षि जीव की स्वतंत्रता पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों। जो स्वतंत्र न हो तो उसको पाप–पुण्य का फल कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जैसे भृत्य स्वामी; और सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध मे अनेक पुरुषों को मारके अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हों तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर की प्रेरणा

होवे। स्वर्ग–नरक अर्थात् सुख–दुःख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे मनुष्य ने शस्त्रविशेष से किसी को मार डाला तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप–पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिए अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतंत्र, परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिए कर्म करने में जीव स्वतंत्र और पाप के दुःखरूप फल भोगने में परतन्त्र है।

जीव कभी उत्पन्न नही होता वह तो अनादि है। जैसे ईश्वर और जगत् का उपादन कारण नित्य है। और जीव का शरीर तथा इन्द्रियाँ के गोलक परमेश्वर के बनाये हुए हैं, परन्तु वे सब जीव के अधीन हैं। जो कोई मन, कर्म, वचन से पाप–पुण्य करता है, वही भोक्ता है ईश्वर नहीं। जैसे किसी के द्वारा किसी को तलवार से मारने पर दण्ड का अधिकारी तलवार नहीं मारने वाला कहाता है। इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर उसके कर्मों का भोक्ता नहीं होता, किन्तु जीव भुगानेवाला होता है। जो परमेश्वर कर्म कराता होता तो कोई जीव पाप नहीं करता, क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने की प्रेरणा नहीं करता। इसलिए जीव अपने काम करने में स्वतंत्र है जैसे जीव अपने कर्मों के करने में स्वतन्त्र है, वैसे ही परमेश्वर भी अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है।[गअपपप]

प्रकृति

महर्षि के यजुर्वेद भाष्य में प्रकृति के स्वरूप, कार्य, एवं नित्यत्व आदि पक्षों पर विस्तार से चर्चा की है। महर्षि प्रकृति को स्पष्ट करते हुए लिखते है कि जो प्रकृति सब कार्यरूप जगत् का प्रलय करने हारी, कार्यकारणरूप अपने कार्य को अपने में लय करने हारी है, जो सेही खेती आदि का विनाश करती है, जो वायु खरहा के समान चलता हुआ सब को सुखाता है और जो मेघ सांप के समान पृथिवी पर जाता है, उन सब को प्रकृति जानो।[गपग] प्रकृति का कार्य के सम्बन्ध में कहते है कि जो अनन्त ब्रह्म वह प्रकृति और जीवों से भिन्न है। ऐसे ही प्रकृतिरूप कारण विभु है, उससे जो–जो उत्पन्न होगा, वह वह समय पाकर ईश्वर के नियम से नष्ट हो जाता है, जैसे जीव प्राण, उदान से सब व्यवहारों को सिद्ध करते, वैसे ईश्वर अपने सामर्थ्य से इस जगत् के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयों को करता है। इस क्रम में प्रकृति के स्वरूप एवं नित्यत्व पर लिखते है कि

हे मनुष्याः! भवन्तो यत् किंचित् कार्यं जगत्.....न चाऽभावाद् भावोत्पत्तिर्भवतीति विज्ञयम्।[गग]

अर्थात् हे मनुष्य! आप सभी जितने कुछ जगत को देखते हो, वह अदृष्ट कारण रूप जानों जगत् का बनाने वाला परमात्मा, जीव, पृथिवी आदि तत्त्व जो उत्पन्न हुआ वा जो होगा और जो प्रकृति वह सब स्वरूप से नित्य है, कभी इस का अभाव नहीं होता और यह भी जानना चाहिए कि प्रकृति से भाव की उत्पत्ति कभी नहीं होती। इस प्रकार जो मनुष्य इस समस्त जड़जगत् के अनादि नित्य कारण को उपासना भाव से स्वीकार करते हैं, वे अविद्या को प्राप्त होकर क्लेश को प्राप्त होते है। क्योंकि प्रकृति तथा पुरुष का अनादि संयोग होने के कारण प्रकृति के कार्य बुद्धि इत्यादि का पुरुष के साथ प्रवाह अनादि है।

पुनर्जन्म

जीव शाश्वत, नित्य है और उसके कर्म भी प्रवाहरूप से नित्य हैं एवं कर्म और कर्मवान् का नित्य सम्बन्ध होता है। जो जीव शरीर को छोड़ते हैं, वे वायु और औषधि आदि पदार्थों से भ्रमण करते–करते गर्भाशय को प्राप्त होके नियत समय पर शरीर धारण करके प्रकट होते हैं। यजुर्वेद भाष्य में महर्षि पूनर्जन्म के सम्बन्ध में लिखते हुए कहते है कि

हे जीवोः! भवन्तो यदा शरीरं त्यजत, तदैतद्भस्मीभूतं सत् पृथिव्यादिना सह संयुनक्ति, यूयमात्मानश्चाम्बाशरीरेषु गर्भाशयं पुनः सशरीराः सन्तो विद्यमाना भवत।[गगप]

अर्थात् हे जीवों! तुम लोग जब शरीर छोड़ो, तब यह शरीर राख रूप होकर पृथिवी आदि पांच भूतों के साथ मिल जाता है। तुम अर्थात् आत्मा माता के शरीर स्थित गर्भाशय में पहुंच, फिर शरीर धारण किये हुए विद्यमान होते हो। साथ ही महर्षि पुनर्जन्म का प्रतिपादन करते हुए निरुक्त के भी कुछ सन्दर्भ प्रस्तुत करते हुए लिखते है –

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः। नानायोनिसहस्त्राणि मयोशितानि यानि वै।।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः। मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा।।

जब मनुष्य को ज्ञात होता है तब वह ठीक–ठीक जानता है कि मैंने अनेक बार जन्ममरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारों गर्भाशयों का सेवन किया। अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया, अनेक माता–पिता और सुहृदों को देखा है।

अवाङ्मुखः पीड्यमानों जन्तुश्चैव समन्वितः।

अत्र 'मृतश्चाहं पुनर्जात' इत्यादि निरुक्तकारैरपि पुनर्जन्मधारणमुक्तिमिति बोध्यम्।।

अर्थात् मैंने गर्भ मे नीचे मुख, ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होके अनेक जन्म धारण किये। परन्तु अब उन महादुःखों से तभी छूटूंगा कि जब परमेश्वर में पूर्ण प्रेम और उसकी आज्ञा का पालन करूंगा, नहीं तो इस जन्ममरण रूप दुःखसागर के पार जाना कभी नहीं हो सकता।[गगपप] योगदर्शन के द्वितीय पाद में पंचक्लेश के अन्तर्गत अभिनिवेश क्लेश से पुनर्जन्म की प्रमाणिक सिद्धि होती है।

स्वरस्वाही विदुषोऽपि तथाऽभिरूढोऽभिनिवेशः।।[गगपपप]

भाष्यकार व्यास कहते हैं कि हर एक प्राणियों में यह इच्छा देखने को मिलती है कि मैं सदैव सुखी बना रहुं। मरूं नही कोई भी नहीं चहता कि मैं न होऊ। ऐसी इच्छा पूर्वजन्म के अभाव में कभी नहीं हो सकती। क्योंकि कृमिपर्यन्त को भी मरण का भय बराबर होता ही है। अतः यह व्यवहार पूनर्जन्म की सिद्धि को जनाता है।

मुक्ति

जिससे सब बुरे काम और जन्ममरणादि दुःखसागर से छूटकर सुखरूप परमेश्वर को प्राप्त होके सुख में ही रहना मुक्ति कहाती है।[गगपअ] योगदर्शन के अनुसार ''अवद्यिा से निवृत्त होने से जो चित्तवृत्ति और पुरुष के संयोग की निवृत्ति होती है वह दुःख से छूटना और द्रष्टा पुरुष का सत्त्वादि गुणों से पृथक होना ही कैवल्य अर्थात् मुक्ति है।''[गगअ] वस्तुतः मनुष्य अपने विवेकानुसार जिस भी कार्य को करता है वह उसे करने से पूर्व उसमें सुख को देखता है तदोपरान्त वह उसमें संलग्न होता है। किन्तु ज्ञान के अभाव में सुख और मुक्ति की अवस्थाओं को प्राप्त करना सम्भव नहीं। महर्षि कहते है कि किसी पदार्थ को जान मनुष्य ज्ञानी नहीं हो सकता उसके लिए तो परमेश्वर को यथावत् जानने की आवश्यकता होती है। जो सबसे बड़ा, सबका प्रकाश करने वाला और अविद्या आदि दोषों से अलग है, उसी पुरुष को परमेश्वर एवं इष्टदेव जानो। उसको जाने बिना कोई मनुष्य यथावत् ज्ञानवान् नहीं हो सकता।[गगअप] जो बद्ध है उसे मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती, मुक्ति प्राप्ति का मार्ग एवं साधन बताते हुए महर्षि लिखते है कि–

यदि मनुष्या ऐहिकपारमार्थिके सुखे इच्छेयुस्तर्हि.....मार्गोऽस्ति अस्मादन्यः कश्चिदपि मनुष्याणां मुक्तिर्मो न भवति।

अर्थात् यदि मनुष्य इस लोक–परलोक के सुखों की इच्छा करें तो सबसे अति बड़े स्वयंप्रकाश और आनन्दस्वरूप अज्ञान के लेश से पृथक् वर्तमान परमात्मा को जान के ही मरणादि अथाहदुःखसागर से पृथक हो सकते हैं, यही सुखदायी मार्ग है, इससे भिन्न कोई भी मनुष्यों की मुक्ति का मार्ग नहीं है।[गगअपप] इस प्रकार मुक्ति के साधन पर भी महर्षि आर्योद्देश्यरत्नमाला में प्रकाश डालते हुए लिखते है कि ईश्वर स्तुति, प्रार्थना और उपासना का करना, धर्म का आचरण और पुण्य का करना, सत्संग विश्वास तीर्थसेवन सत्पुरुषों का संग और परोपकारादि सब अच्छे कामों का करना तथा सब दुष्ट कर्मों से अलग रहना। ये सब मुक्ति के साधन कहाते हैं।[गगअपपप]

मुक्ति में साधक कितने समय तक रहता है उस पर लिखते हुए महर्षि कहते है कि प्रकृति छत्तीस हजार वार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है, उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति का आनन्द में रहना, दुःख का न होना ग्रहण किया गया है।[गगपग] इस प्रकार मुक्ति को महर्षि नित्य रूप में स्वीकार नहीं करते है।

मन

महर्षि मन को एक विशिष्ट रूप में परिभाषित करते हुए कहते है कि ईश्वर हमारे सब कामों को सब प्रकार से देखता है ऐसा जानकर उससे सदा डरना कि जो मैं पाप करूँगा तो ईश्वर मुझ पर अप्रसन्न होगा इत्यादि गुण वाली वस्तु का नाम मन स्वीकार किया है। अर्थात् जिसके द्वारा जीवात्मा कर्मों को सम्पादित करता है वह मन है।[गगग] मन के शुद्ध होने से विद्वान लोग परमेश्वर को जान के नित्य सुख को प्राप्त हो सकते हैं। पवित्र मन से सत्य ज्ञान होता है इसलिए उसका नियमन करना आवश्यक है यजुर्वेद भाष्य करते हुए महर्षि लिखते है कि हे मनुष्यों तुम को चाहिए कि परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त कर धर्म का आचरण मे प्रवृत्त करें। हे मनुष्यो जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप

वृत्तिवाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करनेवाला, प्राणियों के सब कर्मों का साधक, अविनाशी मन है, उसको न्याय और सत्य आचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात् अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो।

उपासना

ईश्वर के आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना[गगगप] जैसे ईश्वर के गुण, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय योगाभ्यास के साक्षात् करना ही उपासना कहलाती है, जिसका फल ज्ञानी की उन्नति आदि है। उपासना फल के विषय में कहा गया है–

ये विद्वांसः सर्वस्य जगतोऽन्तरिक्षेऽनन्तबलेन धर्त्तारं निर्मातारं सुखप्रदं शुद्धं सर्वशक्तिमन्तं सर्वान्तर्यामिणमीश्वरमुपासते, त एवं सुखयन्ति नेतरे।[गगगपप]

अर्थात् जो विद्वान लोग सब जगत के बीच पोल में अपने अनन्त बल से धारण करने, रचने और सुख देने हारे सर्वशक्तिमान् सब के हृदयों में व्यापक ईश्वर की उपासना करते हैं, वे ही सुख पाते हैं, अन्य नहीं। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में महर्षि लिखते है कि ''उपासना का उपदेश देने वाले और ग्रहण करने वाले दोनों के प्रति परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है कि जब तक तुम सनातन ब्रह्म की सत्यप्रेमभाव से अपने आत्मा को स्थिर करके नमस्कारादि रीति से उपासना करोगे, तब तक मैं तुमको आशीर्वाद प्राप्त होगा। कि सत्यकीर्ति तुम दोनों को प्राप्त हो। वैसे ही जैसे परम विद्वान को धर्ममार्ग यथावत् प्राप्त होता है, इसी प्रकार तुमको सत्यसेवा से सत्यकीर्ति प्राप्त हो। फिर भी मैं सबको उपदेश करता हूँ कि हे मोक्षमार्ग के पालन करने वाले मनुष्यो! तुम सब लोग सुनो कि जो दिव्य लोकों अर्थात् मोक्षसुखों को पूर्व प्राप्त हो चुके हैं, उसी उपासनायोग से तुम भी उन सुखों को प्राप्त हो, इसमें सन्देह मत करो।''[गगगपपप]

निष्कर्ष

दार्शनिक विचारों का विश्लेषण योग के सन्दर्भ में किया गया है। शोध में विशेष रूप से सात मूलभूत दार्शनिक बिंदुईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मुक्ति, मन और उपासना का गहन अध्ययन किया गया है, जिनका महर्षि के उपासना योग में महत्वपूर्ण स्थान है।महर्षि दयानंद ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और निराकार मानते हैं, जो योग की साधना का परम लक्ष्य है। जीव को वे स्वतंत्र, नित्य एवं कर्मानुसार फल प्राप्त करने वाला बताते हैं। प्रकृति को त्रिगुणात्मक एवं जड़ मानते हुए वे इसको सृष्टि का कारण स्वीकारते हैं, परन्तु इसे ईश्वर का स्वरूप नहीं मानते। पुनर्जन्म की अवधारणा को वे कर्म सिद्धांत से जोड़ते हैं, जिससे योग–साधना के माध्यम से आत्मा के शुद्धिकरण और उन्नति की आवश्यकता सिद्ध होती है। मुक्ति उनके अनुसार आत्मा की परम स्वतंत्र अवस्था है, जिसमें वह जन्म–मरण के चक्र से एक निश्चित अवधि के लिए मुक्त हो जाती है। उपासना का स्वरूप वे यथार्थ, विचारशील और वैदिक मानते हैं, जिसमें योग, तप, जप और ध्यान सम्मिलित हैं।निष्कर्षतः यह शोध दर्शाता है कि महर्षि का उपासना योग वैदिक परंपरा पर आधारित, तार्किक, वैज्ञानिक और आचारप्रधान है, जो आत्मोन्नति और मोक्ष का सशक्त मार्ग प्रस्तुत करता है।

सदर्भ ग्रंथ सूची

1. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, महर्षि दयानन्द कृत, उपासनाविषय, पृ0–203
2. सत्यार्थप्रकाश, महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत, प्रथमसमुल्लास, 72 वाँ संस्करण, पृ0–21
3. दयानन्द ग्रन्थमाला, भाग–02, आर्योद्देश्यरत्नमाला, मन्तव्य–01, पृ0–709
4. योगसूत्र–1/24
5. योगसूत्र–1/25
6. योगसूत्र–1/26
7. सत्यार्थप्रकाश, महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत, सप्तमसमुल्लास, 72 वाँ संस्करण, पृ0–148
8. श्वेताश्वतर उपनिषद–3.11
9. श्वेताश्वतर उपनिषद–6.8

10. ऋग्वेद–1.164.39
11. ईशोपनिषद–01
12. यजुर्वेद–13.4
13. सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम समुल्लास, पृ–165
14. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश, पृ–04
15. दयानन्दग्रनथमाला, भाग–02, आर्योद्देश्यरत्नमाला, मा0–77, पृ0–716
16. सत्यार्थप्रकाश, नवमसमुल्लास, पृ–115
17. सत्यार्थ प्रकाश, नवमसमुल्लास, पृ–165
18. सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम्समुल्लास, पृ–149
19. यजुर्वेद भाष्य–23/56
20. यजुर्वेद भाष्य–25/23
21. यजुर्वेद भा0–12/38
22. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, महषि दयानन्द कृत, पुनर्जन्माविषयः, पृ0–255
23. योगसूत्र–2/9
24. दयानन्दग्रनथमाला, भाग–02, आर्योद्देश्यरत्नमाला, मा0–29, पृ0–711
25. राजवीर शास्त्री, पातंजल योगदर्शन भाष्यम, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, पृ0–265
26. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, महर्षि दयानन्द कृत, सृष्टिविद्याविषय, पृ0–157
27. यजुर्वेद भा0–31/18
28. दयानन्दग्रन्थमाला, भाग–02, आर्योद्देश्यरत्नमाला, मा0–30, पृ0–711
29. सत्यार्थ प्रकाश, नवमसमुल्लास, पृ0–118
30. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, महर्षि दयानन्द कृत, वेदोक्तधर्मविषय, पृ0–119
31. दयानन्द गन्थमाला, भाग–02, आर्योद्देश्यरत्नमाला, मन्तव्य–26, पृ0–711
32. यजुर्वेद भा0–11/06
33. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, महषि दयानन्द कृत, उपासनाविषय, पृ0–20